Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies,
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2019 = 6.380, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL, JAN-FEB, 2020, VOL- 7/57

संस्कृत साहित्य में काव्य–शास्त्र का उद्‌भव एंव विकास (एक परिचय)

Birpal Singh, Ph. D.
Associate Professor And Head – Department Of Sanskrit, Government College Gonda Aligarh, U.P.-202123

Scholarly ResearchJournal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

काव्यशास्त्र का उद्‌भव–

काव्य साहित्य की एक ऐसी अभिव्यक्ति है जो शब्दों एंव वाणी के द्वारा मानव की आत्मा को स्पर्श करती है। सभ्यता के प्रारम्भ से ही विचार एवं भाव संप्रेषण में वाणी का वैशिष्ट प्रदर्शित होने लगा था। मानव सभ्यता की प्रतिष्ठित अभिव्यक्ति के रूप में वेदों का आधार सिद्ध है। वेद स्वयं में काव्य हैं अथवा वेदों में काव्य है यह प्रारम्भ से ही विचारणीय विषय रहा है। अतः वेद और काव्य का नितान्त अन्तर्सम्बन्ध सर्वस्वीकार्य एवं सर्वग्राह्य है। वेद भारतीय मनीषा के आदि स्रोत हैं। वे सम्पूर्ण भारतीय विद्याओं के उत्पत्ति के मूल हैं। विविध दर्शन मीमांसा, काव्य, नाटक, स्थापत्य कला, संगीत एवं अन्य समस्त कलाएँ वेद–निःसृत हैं। किसी भी विद्या के लिए नियम निर्देश या अनुशासन के लिए बनाए गये सिद्धान्त ही शास्त्र हैं। अतएव वेदोत्तर काल से ही महान आचार्यों ने विविध विद्याओं के नियमन, निर्देशन एवं अनुशासन हेतु विविध शास्त्रों का प्रणयन किए। उन्हें ही तद्‌विद्याविषयक शास्त्र कहा गया। काव्य शास्त्र के सम्बन्ध में भी यही तथ्य स्वीकृत है।

वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों में अनेक काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का प्रचुर उल्लेख मिलता है जो पश्चातवर्त्ती आचार्यों के लिए आधारस्तम्भ सिद्ध हुआ। इस प्रकार आचार्य भामह, रुद्रट आदि ने अलंकार, वामन आदि ने रीति, आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य, आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति, आनन्दवर्धन ध्वनि सम्प्रदाय, भरत मुनि ने रस सम्प्रदाय की काव्यशास्त्रीय स्थापनाएँ की।

अलंकार के लिए सर्वप्रथम ऋग्वेद के सप्तममण्डल में **'अरंकृतिः'** शब्द का प्रयोग मिलता है– **'का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः''**[1] इसके अतिरिक्त वैदिक ऋचाओं में उपमा, रुपक, अतिशयोक्तिआदि के उदाहरण तो मिलते ही हैं परन्तु सीधे अलंकार शास्त्र उपलब्ध नहीं होता है निघण्टु में उपमा के वाचक पदों का उल्लेख अवश्य मिलता है। निरुक्त में 'यास्क' ने 'गार्ग्य' का उपमा लक्षण प्रस्तुत किया है–**''उपमा यत् अतत् तत्सदृशमिति''**[2]। उपमा वहाँ होती है जहाँ एक वस्तु दूसरी से भिन्न होते हुए भी उसी के सदृश हो। गार्ग्य के अनुसारउपमान को उपमेय की अपेक्षा गुणों में श्रेष्ठ होना चाहिए। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार उपमा की शास्त्रीय कल्पना निरुक्त से (600 ई0पू0) हो चुकी थी।

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

काव्य के अनेक तत्त्वों में रस का महत्त्व अपरिहार्य है। रस हीकाव्य की जीवन्तता है।

''रसाद्याधिष्ठितं काव्यं जीवदूरूपतया यतः।''[3]

रस तत्त्व के महिमा का सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों पक्ष वेदों में वर्णित हुआ है। उपनिषदों में ''रसो वै सः'' कहकर रस एवं ब्रह्म के तादात्म्य का प्रतिपादन किया गया है। यहाँ सृष्टि रचना के सम्बन्ध में ब्रह्म एवं काव्य रचना के सम्बन्ध में रस का औचित्य समझा जा सकता है। इसी का प्रतिपादन आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' में किया है।

काव्यशास्त्र का विकास एवं युग परिचय –

(1) पूर्वभरत युग

(2) भरत युग

(3) भरतोत्तर युग (पण्डित राजजगन्नाथ तक)

(4) पण्डित राजोत्तर युग

(1) पूर्व भरत युग

पूर्व भरत युग में वैदिक संहिताओं से लेकर पौराणिक तथा महाकाव्य (रामायण, महाभारत) का अतिशय विशाल वाङ्मय काव्यशास्त्र की विविध विधाओं, तत्त्वों या सिद्धान्तों से भरा पड़ा है। वह इतना विराट है कि संसार की किसी भी सभ्यता में इतना परिपूर्ण एवं समृद्ध साहित्य उपलब्ध नहीं होता है। वेद की ऋचाओं में जो काव्यतत्त्व अपने मूल रूप में अथवा अपरिभाषित एवं अपरिष्कृत रूप में विद्यमान है वही तो आचार्य भरत का उपजीव्य बना। इस तथ्य का यथेष्ठ वर्णन ऊपर किया जा चुका है। सम्प्रति अग्रसर होते हुए भरत युग पर विचार करना श्रेयस्कर होगा।

(2) भरत युग

भरत युग के एकमात्र प्रतिनिधि काव्य पुरुष स्वयं आचार्य महामुनि भरत ही हैं जिन्होंने 'नाट्यशास्त्र' नामक महाग्रन्थ की रचना की। यह महाग्रन्थ काव्य, अलंकार, रंगम च, नृत्य, गीत, वाङ्य, अभिनय, भाषा–विधान छंद, रस तथा अन्य काव्यशास्त्रीय कलाओं का एकमात्र महाकोष के रूप में विगत् दो सहस्त्र वर्षों से काव्यशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र के आचार्यों के लिए प्रकाशस्तम्भ की भाँति स्थित रहा है। आज भी बृहत्तर भारत के अनेक भूखण्डों में प्रचलित अनेक प्रकार की नाट्य एवं नृत्य शैलियों का एकमात्र स्रोत भरत का नाट्यशास्त्र ही है। नाट्यशास्त्र का षष्ठ अध्याय नाट्य एवं काव्य का प्राणस्वरूप है। इसमें आचार्य द्वारा काव्य की आत्मा 'रस तत्त्व' को प्रतिष्ठापित किया गया है।

''शृंगारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः

बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।[4]

आचार्य भरतमुनि ने आठ रसों– शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स्य एवं अद्भुत की प्रतिष्ठा किया है। इसी क्रम तीन भाव– स्थायी, संचारी तथा सात्विक दर्शाये गये हैं।

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

स्थायी भाव भी आठ प्रकार के हैं–

''रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा। जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावा प्रकीर्तिताः।।''[5]

स चारी भाव 33 की संख्या में प्रदर्शित हैं–

''निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथाऽसूया मदश्रमाः। आलस्यं चैव (दैन्य च) चिन्ता मोहः स्मृतिर्धृतिः।।

व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जड़ता तथा। गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एव च।।

सुप्तं विबोधोऽमर्षश्चाऽप्यवहित्थमथोग्रता। मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च।।

त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः।।[6]

सात्विक भाव की संख्या भी आठ वर्णित है–

''स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमा च स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।

वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः।।''[7]

काव्यशास्त्र के तत्वो का विस्तृत विवेचना नाट्यशास्त्र में विशिष्ट रूप से प्राप्त होती है। आचार्य भरत संवादतत्त्व (वाक्) को नाट्य का मूलाधार (नाट्य–शरीर) मानते हैं। वस्तुतः संवाद ही नाट्यस्वरूप होता है।

संवाद वाक् से बनते हैं। शब्द और अर्थ की सार्थकता से वाक् व्यवस्थित होता है। आचार्य ने वाक् के धर्मों को कहा हैं। यथा–

नामाख्यातनिपातैरुपसर्गसमासतद्धितैर्युक्तः।

सन्धिविभक्तिषु युक्तौ विज्ञेयो वाचिकाभिनयः।।[8]

अर्थात् आचार्य भरतमुनि ने चौदह स्वरों तथा क से लेकर ह तक तैतीस व्य जनों को मान्यता देते हुए वे नाम, आख्यात्, उपसर्ग, निपात, समास, तद्धित एवं सन्धि आदि की उत्पत्ति परक व्याख्या किया है। ये व्याख्याएँ प्रत्यय आदि शब्दों की सार्थकता का बोध करा देती है।[9] इन पदों (शब्दों) को मिलाकर पदबन्ध (वाक्य) बनता है। आचार्य भरत पदबन्ध को दो प्रकार का मानते हैं– निबद्ध एवं चूर्ण। वस्तुतः यहीं दोनों आगे चलकर पद्य एवं गद्य के नाम से प्रचलित हुए। चूर्ण पद उतना लम्बा हो सकता है जितना वक्ता के कथन का अभिप्राय। यही गद्य बनता है। परन्तु इसके विपरीत निबद्ध पदबन्ध निश्चित अक्षरों वाला होता है, यही है छन्द। नाट्यशास्त्रकार प्रारम्भ में ही छन्दों की असंख्यता की घोषणा कर देते हैं।

''असंख्यपरिमाणानि वृत्तान्याहुरथो बुधाः।।''[9]

तथापि पन्द्रहवें अध्याय में वे 48 समवृत्त छन्दों का लक्षण उदाहरण सहित प्रस्तुत करते हैं। इसके साथ अधिक लम्बे (दण्डक) छन्द के साथ अर्द्धसमवृत्त, विषमवृत्त एवं आर्यादि मात्रिक छन्दों का भी वर्णन लक्षण एवं उदाहरण सहित करते हैं।

नाट्यशास्त्र का 16वां अध्याय लक्षणों एवं अलंकारों का है। लक्षणों की संख्या 36 है– भूषण, अक्षरसंघात् आदि लक्षणों के बाद आचार्य ने चार अलंकारों का परिचय दिया है।

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

उपमा दीपकं चैव रुपकं यमकं तथा।

काव्य स्यैते ह्यलंकाराश्चत्वारः परिकीर्तिताः।।[10]

वस्तुतः लक्षण एवं अलंकार काव्य के भूषण तत्त्व थे। दोनें का उद्देश्य समान था दोनों के बीच कोई विभाजन नहीं था। उद्देश्य की समानता के कारण आचार्य भामह का युग आते–आते (छठीं शती ई0) अनेक लक्षण अपनी मूल संज्ञा के साथ अलंकार के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।

आचार्य भरत इसी अध्याय में दश काव्यदोषों एवं दश काव्य गुणों की भी विशेष चर्चा करते हैं। काव्य दोष हैंगूढ़ार्थ, अर्थान्तर, अर्थहीन, भिन्नार्थ, एकार्थ, अभिलुप्तार्थ, न्यायादपेत, विषम, विसन्धि तथा शब्दच्युत। काव्य गुण– श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओजस, पदसौकुमार्य, अर्थव्यक्ति उदारता तथा कान्ति। वस्तुतः भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में दृश्य काव्य एवं श्रव्य काव्य के सम्पूर्ण तत्त्वों का विस्तृत विवेचन हुआ है। इसके साथ वे कुछ ऐसे शास्त्रों की भी चर्चा करते हैं। जो काव्यशास्त्र को सांगोपांग बनाने में पूर्ण सहयोगी सिद्ध होते हैं। यथा संगीतशास्त्र, छन्दशास्त्र, भूगोल, खगोल, सामुद्रिकशास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र आदि। भरत के नाट्यशास्त्र में अग्रिम परिवर्त्ती युग के आचार्यों के लिए एक विराट प्रवेश द्वार खुलता है जो काव्यवीथियों में भ्रमण का सुगम मार्ग प्रशस्त करता है। भरतोत्तर युग के आचार्यों के लिए नाट्यशास्त्र एक प्रकाश स्तम्भ की भाँति अद्यावधि अपनी आभा बिखरे रहा है। ऐसा कोई भी आचार्य नहीं हुआ जिसकी कृतियों में नाट्यशास्त्र की आभा न परिलक्षित हो रही हो।

(3) भरतोत्तर युग

आचार्य भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र के पश्चात् उसकी औपजीव्यता में अनेक लोक विश्रुत आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ। यद्यपि महानाटककार भास आचार्य भरत से अप्रभावित प्रतीत होते हैं स्यात् इसीलिए उन्हें भरत से पूर्ववर्त्ती स्वीकार किया जाता है। परंच कविकुल गुरु कालिदास को भरत का परवर्त्ती स्वीकार किया जाता है। कालिदास एवं अन्य कविगण नाट्यशास्त्र के नियमों तथा म चीय निर्देशों का निष्ठापूर्वक पालन करते हैं। भरतोत्तर युग की प्रमुख विशेषता यह प्राप्त होती है कि उसमें काव्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र का पृथक्–पृथक् किन्तु समनान्तर विकास हुआ। यद्यपि आचार्य भरत ने जो षटत्रिशंक नाट्यशास्त्र लिखा है उसमें काव्य एवं नाटृय (श्रव्य एवं दृश्य उभयकाव्य) दोनों का समन्वित प्रतिष्ठापन हुआ है। भरतोत्तर युग में दोनों शाखाएँ एक–दूसरे से पृथक् होकर स्वतन्त्र विकास के पथ पर अग्रसर हुई। नाट्यशास्त्री ग्रन्थों में जहाँ अर्थोपक्षेपकों, प चावस्थाओं, प चार्थप्रकृतियों, प चसन्धियों, नायक, नायिका भेदों, नायिकालंकारों, नाट्य– प्रवृत्तियों, नाट्यरसादिकों की विशद व्याख्याएँ की गयीं वहीं काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में काव्य लक्षण, काव्य प्रयोजन, काव्य भेद, शब्द शक्ति, रीति, वृत्ति, काव्यदोष, अलंकार एवं रस भाव आदि की विशद विवेचना हुई है। यहाँ भरतोत्तर युगीन कुछ प्रमुख आचार्यों और उनकी रचनाओं की समीक्षा वा छनीय होगी। विभिन्न आचार्यों के सानिध्य में काव्य किस प्रकार पुष्पित एवं पल्लवित हुआ, दृष्टव्य है।

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

(4)पंडित राजोत्तर युग

पण्डितराज ने तीन काव्यशास्त्रीय कृतियाँ– 'चित्रमीमांसा खण्डन', 'मनोरमाकुचमर्दन टीका' तथा 'रसगौंधर' की रचना किया। इसके अतिरिक्त नौ साहित्यिक रचनाएँ– 'गङ्गालहरी', 'अमृतलहरी', 'लक्ष्मीलहरी', 'करुणालहरी' तथा 'यमुनाभरण' (चम्पू) पण्डितराज द्वारा विरचित हैं।काव्यशास्त्रीय कृतियों में 'रसगङ्गाधर' पाण्डितराज की अत्यन्त प्रौढ़ तथा प्रतिष्ठापरक कृति है। इसके मात्र दो आनन उपलब्ध है। आचार्य ने अपने इस प्रगल्भ कृति में पूर्ववर्त्ती आचार्यों की कटु आलोचना करने में संकोच नहीं किया है। आलोचना में भी उनका मौलिक चिन्तन सर्वथा परिलक्षित हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रथम आनन में काव्यलक्षण, काव्यहेतु तथा काव्यभेद की समीक्षा की गयी है। अनन्तर इसके शब्द एवं अर्थ गुणों की समीक्षा के साथ रस, भाव, रसाभाष, भावसन्धि तथा भावसबलता का भी विवेचन इसी आनन में है। द्वितीय आनन में सर्वप्रथम संलक्ष्यक्रम ध्वनि का विवेचन तद्नन्तर ध्वनि के विविध भेदों एवं उपमा से उत्तर तक 70 अलङ्कारों की उदाहरण सहित व्याख्या की गयी है। इतनी प्रभावी समीक्षा के बाद भी यह ग्रन्थ अपूर्ण ही प्रतीत होता है। सम्भवतः औरंगजेब द्वारा राजनैतिक उथल–पुथल के साथ शाहजहाँ को कारागार में डालने के कारण उत्पन्न अवरोध से यह ग्रन्थ अपूर्ण रह गया। तत्पश्चात का समय ही पंण्डित राजोत्तर युग के नाम से जाना जाता है।

संदर्भः

संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास– बलदेव उपाध्याय, काव्यमीमांसा, कामसूत्र–

ऋग्वेद–7–29–3

निरुक्त 3–13

भारतीय साहित्यशास्त्र प्रथम खण्ड, पृ0 15, आचार्य बलदेव उपाध्याय

अष्टाध्यायी– 2–1–55, 2–1–56, 2–3–62

महाभाष्य– (2–1–55)

उद्धृत–संस्कृत का समीक्षात्मक अर्वाचीन काव्यशास्त्र–डॉ0 अभिराज राजेन्द्र मिश्र

पी.वी. काणे, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोपाटिक्स, पृ0 325

नाट्यशास्त्र 6–116

नाट्यशास्त्र 6–18

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies